125

ISSN-2231-3885 Samved

संवेद

फरवरी 2022, मूल्य : ₹ 40

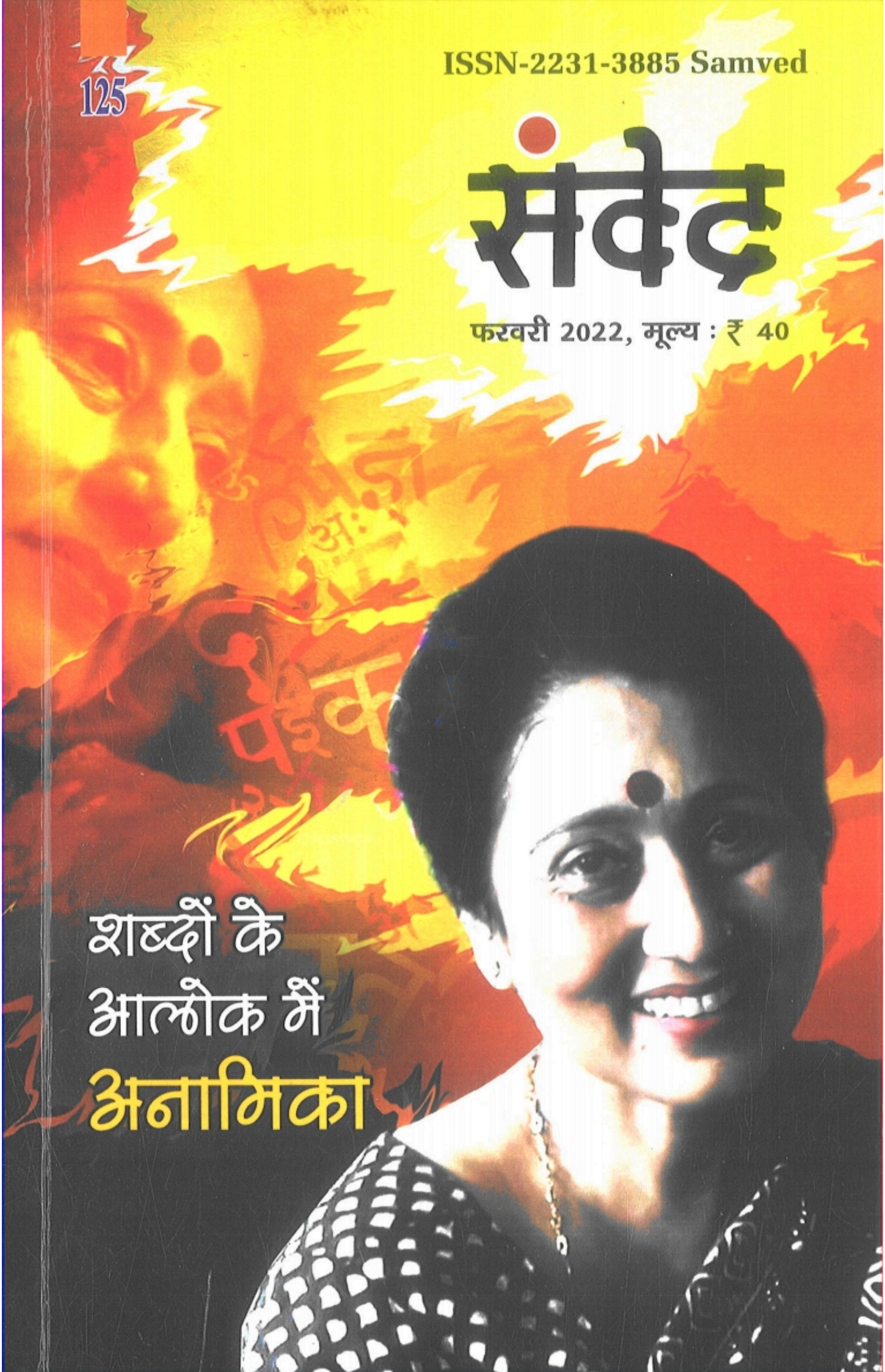

शब्दों के आलोक में अनामिका

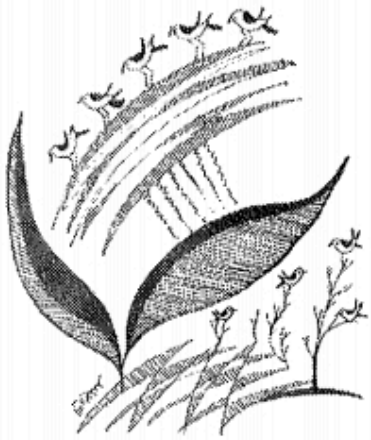

अनामिका का स्त्री-पक्ष

रेखा सेठी

अनामिका की कविताओं का स्त्री-पक्ष अन्य स्त्री रचनाकारों से कई मायनों में भिन्न है। स्वतन्त्र स्त्री-अस्मिता की प्रतिष्ठा तथा स्त्री-मुक्ति की निरपेक्ष हठधर्मिता उनके यहाँ नहीं है। उनका स्त्रीवाद उस ठेठ भारतीय सन्दर्भ से प्रेरित है जहाँ व्यक्ति-इकाई पर बल न देकर परिवार को इकाई मान लिया जाता है। इसलिए उनकी दृष्टि में स्त्री-पुरुष के हित-अहित परस्पर विरोधी न होकर परस्पर सम्बद्ध हैं। अनामिका की वास्तविक चिन्ता जेण्डर स्टीरीयोटाइप्स को लेकर है जो लज्जा, प्रेम, सहिष्णुता, धैर्य, सहकारिता जैसे गुणों को सिर्फ़ स्त्री खाते में डालकर पुरुष को रोबीला, बलवान और आक्रामक बनने पर मजबूर कर देते हैं। ऐसी इकाइयों से निर्मित सामाजिक ढाँचे में सहभागिता की भावना के बजाय अधिकार-भावना प्रमुख हो जाती है। हमारी पारिवारिक संस्थाएँ अक्सर इन विडम्बनाओं से ग्रस्त हैं। अनामिका ने अपनी कविताओं में इन स्थतियों का कोलाज बना दिया है जो परिवार और समाज में स्त्री के स्त्रीकरण की प्रक्रिया को दृढ़ बनाती हैं। उन अन्तर्विरोधों को उकेरते हुए कवयित्री, स्त्री की पीड़ा की साक्षी देती है और उसको निरस्त करने की योजना के तहत यह प्रस्तावित करती है कि स्त्री-दृष्टि व स्त्री-भाषा के द्वारा लिंगाधारित अतिरेक को धो डालना चाहिए—"बराबर का यह साथ तभी हो सकेगा जब पुरुष अति पुरुष न रहें और स्त्रियाँ अति स्त्री। एकध्रुवीय विश्व न माइक्रो स्तर पर अच्छा है, न माइक्रो स्तर पर। सन्तुलन ही सुख का मूलमन्त्र है....सरप्लस न क्रोध का चाहिए, न कामना का।" जिस सन्तुलन की बात यहाँ अनामिका करती हैं वही उनकी स्त्री-दृष्टि का केन्द्र बिन्दु है। उन्होंने अपने स्त्रीवाद को विद्रोह-पताका बनाने की अपेक्षा धीमे से मन में उतरने वाली गली बनाना श्रेयस्कर समझा है।

अनामिका के सभी काव्य-संकलनों में स्त्री सम्बन्धी कविताएँ बड़े काव्य-फलक पर फैली हैं। उसमें बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक स्त्री-जीवन के छोटे-बड़े अन्तर्विरोध दिखाई पड़ते हैं। घर-परिवार में होने वाली छोटी-छोटी नाइंसाफियाँ जिन्हें स्त्री ने अपने जीवन

का अनिवार्य अंग मानकर अपनी दिनचर्या में शामिल कर लिया है। हँसी-हँसी में वे जिस तरह जीवन की इन विसंगतियों का बयान करती हैं उससे पीड़ा का अन्दाजा सहज ही लगाया जा सकता है। घर की चारदीवारी के बाहर खड़ी स्त्री का संघर्ष भी इन कविताओं का कथ्य है और उसके साथ इतिहास और पुराकथाओं के स्त्री-पात्र भी कविता की इस दुनिया के स्थायी निवासी हैं। अनामिका इन सबसे संवाद करते हुए अपनी स्त्री-दृष्टि विकसित करती हैं। उसमें स्त्री के वर्तमान की आवाजाही उसके अतीत और भविष्य में लगातार बनी रहती है। इससे भविष्य का जो नक्शा उभरता है उसमें भावस्थिति तथा परिस्थिति के परिवर्तन का खुद्दारी भरा संकल्प है।

समकालीन कविता में स्त्री-स्वर जिस बिन्दु पर अपनी उपस्थिति दर्ज करता है वह अस्मितामूलक विमर्शों का दौर है। स्त्री-साहित्य को इस समय में जहाँ व्यापक सामाजिक स्वीकृति मिली, वहीं उसे आत्मबोध की कविता कहकर खारिज करने की कोशिश भी होती रही। ऐसे समय में अनामिका ने सहज दृष्टि से घर-परिवार की जीवन-स्थितियों को नया सन्दर्भ देकर इस तरह प्रस्तुत किया कि 'पर्सनल' 'पॉलिटिकल' लगने लगा।

राम, पाठशाला जा!
राधा, खाना पका!
राम, आ बताशा खा!
राधा, झाड़ू लगा!
भैया अब सोएगा
जाकर बिस्तर बिछा।

बचपन से बेटियों को छोटे-छोटे अधिकारों से बहिष्कृत करने के षड्यन्त्र को बेनकाब करने वाली यह पंक्ति हमारे सामाजिक इतिहास का बहुत बड़ा दस्तावेज है लेकिन इसकी चर्चा इस रूप में पहले कभी नहीं हुई और अब भी बहुत बचाकर ही होती है। इसी तरह कवयित्री पतिव्रताओं के सौभाग्य की पोल खोलती है। दाम्पत्य सम्बन्ध पारम्परिक परिवार व्यवस्था में प्रेम या साहचर्य की भावना से रहित 'शासक और शासित' के समानान्तर विकसित हुए हैं जिसकी घुटन और छटपटाहट को अनामिका ने निर्मम औपनिवेशिक शासन के बरक्स प्रस्तुत किया है। 'पतिव्रता' कविता का आरम्भ अँग्रेजी राज व्यवस्था के उस बिम्ब से किया है जहाँ कहा जाता था कि ब्रिटिश राज में सूरज कभी नहीं डूबता, वैसे ही घर में स्त्री के लिए पति के आतंक का साया कभी खत्म नहीं होता–

स्वामी जहाँ नहीं भी होते थे
होते थे उनके वहाँ पंजे,
मुहर, तौलिये, डण्डे,
स्टेम्प-पेपर, चप्पल-जूते,
हिचकियाँ-डकारें-खर्राटे
और त्यौरियाँ-धमकियाँ-गालियाँ खचाखच!

इससे त्रासद स्थिति और क्या हो सकती है कि जिस पति के होने से पतिव्रता का सौभाग्य है, उसके साथ वह कैसा महसूस करती है, यह किसे, कैसे बताये। सम्बन्धों की यह घुटन पारिवारिक हिंसा व अपमान के असंख्य प्रकरणों द्वारा रची जाती है।

भारतीय परिवेश में परिवार के भीतर सम्बन्धों के उस ढाँचे को शताब्दियों से स्वीकार किया जाता रहा है। परिवार की इज्ज़त स्त्री के अपमान और बलिदान पर टिकी रही है। स्त्री की भूमिका गुलामों से भी बदतर रही है। स्त्री-शोषण की सबसे बड़ी आधारभूमि पितृसत्तात्मक व्यवस्था का परिवारगत ढाँचा है जहाँ शील और संस्कारों की महीन बुनावट, स्त्री को समझौते करना सिखाती है, उग्रता हटाकर मुलायम होना सिखाती है। अनामिका की कविता दैनंदिन स्थितियों को गहरी अन्तर्दृष्टि से सजीव करती हैं। ये छोटे-छोटे ब्यौरे उन सामजिक प्रक्रियाओं को समझने में मदद करते हैं जो सतह के भीतर अदृश्य रूप में सदा गतिमान रहते हैं।

स्त्रीवादी समीक्षा के सामाजिक अवदान पर टिप्पणी करते हुए अनामिका लिखती हैं—"स्त्रीवादी समीक्षा का एक बड़ा अवदान यह है कि वैयक्तिक अनुभूतियों का सामाजिक सन्दर्भ इसने सम्भव बनाया और बताया है कि जिसे स्त्रियाँ वैयक्तिक विफलता मानकर घुटती रहती थीं, उस असमंजन और असमंजस का मूल उस पूर्वग्रस्त, पितृसत्तात्मक समाज में है, जिसके शिकार पुरुष भी हैं, क्योंकि दरअसल यह स्त्री और पुरुष दोनों का सम्यक विकास अवरुद्ध करता है। दोनों का जीवन विषाक्त करता है। एक को भेड़ और दूसरे को भेड़िया बना डालता है तो दोनों ही मानवीय गरिमा से नीचे गिरते हैं।"

अपने सशक्त बिम्बों के माध्यम से कवयित्री स्त्री-पुरुष के बीच लगभग स्थायी हो चुके इन विषम सम्बन्धों के मैट्रिक्स को पूरी तीव्रता से उभारती है। ये छोटी-छोटी पीड़ाएँ उसे बड़े परिदृश्य तक ले जाती हैं जहाँ स्त्री को परिवार में रहते हुए स्वयं लगभग अदृश्य कर देना पड़ता है। पति-पत्नी के फ्रेम के बाहर परिवार में अन्य स्त्रियों की स्थिति भी उतनी ही गम्भीर है। घर में वृद्धाएँ कैसे रहती हैं उसका भी दारुण चित्र कवयित्री ने प्रस्तुत किया है—

रहती हैं वृद्धाएँ, घर में रहती हैं
लेकिन ऐसे जैसे अपने होने की खातिर हों क्षमाप्रार्थी
लोगों के आते ही बैठक से उठ जातीं
छुप-छुपकर रहती हैं छाया-सी, माया-सी!

यानी बचपन से बुढ़ापे तक परिवार के भीतर स्त्री की नियति बदलती नहीं। इन कविताओं में दर्ज ये अनुभव स्त्री के एकान्तिक अनुभव नहीं हैं। यहाँ स्त्री एक बड़े सामाजिक वर्ग के रूप में मौजूद है। मौसियाँ, चाचियाँ, वृद्धाएँ, सहेलियाँ सबके अनुभव एक-दूसरे से कड़ियों की भाँति जुड़े हैं और पीड़ा का अन्तःसूत्र लगभग सभी में व्याप्त है। नारी को देवी मानने वाले इस देश में स्त्री के दुख की गाथा अनवरत है। न उसकी कोई सामाजिक हैसियत है, न सम्मान। सबकी नियति लगभग एक जैसी है।

अनामिका की स्त्री-सम्बन्धी सभी कविताएँ अलग-अलग न होकर एक लम्बी कविता लगती हैं। उन्होंने इन छोटे-छोटे आख्यानों को काव्य-युक्ति की तरह प्रयुक्त किया है वे कहीं भी इन स्थतियों के प्रतिकार की सचेत व्याख्या नहीं करती लेकिन जिस तरह वे इन छोटे-बड़े अनुभवों को एक धागे में पिरोकर एक-दूसरे का सन्दर्भ बना देती हैं, उससे मन पर स्त्री-जीवन की पीड़ा का स्थायी निशान गहरे अंकित हो जाता है।

स्त्री-यथार्थ को चित्रित करने में अनामिका ने कल्पना का खूब सहारा लिया है।

उनकी कविताएँ एक साथ कई परतों पर घटती हैं। कुछ सच्चाइयाँ जो हमारे बहुत करीब से जन्मती हैं वो अचानक इतिहास की बड़ी सच्चाई से जुड़ जाती हैं। जैसे उपरोक्त पंक्तियों में घरेलू हिंसा का बिम्ब चाँद के दाग से जुड़ जाता है। हर क्षण स्त्री, परिवार की जिस चक्की में यान्त्रिक जीवन जीती चली जाती है उसमें 'उसे मरने की फुर्सत तक नहीं।' रोज़मर्रा के जीवन से जुड़ी इस पंक्ति को अनामिका स्त्री-जीवन की बड़ी त्रासदी के संकेतक रूप में प्रस्तुत करती हैं। मरते-मरते भी स्त्री सोचती है कि 'फन्दा लगा लूँ/ या पहले पंखे की धूल झाड़ दूँ'। यह स्थिति आस-पास की साधारण स्त्री की भी है...सीता की भी रही होगी जब तक लव-कुश लक्ष्य-संधान में समर्थ नहीं हो गये... और ईसा मसीह भी यदि औरत होते तो इन्हीं यन्त्रणाओं से गुज़रते, ऐसी सम्भावना व्यक्त करके अनामिका निश्चय ही स्त्री-जीवन के फलक को विस्तृत कर देती हैं।

ढाई हज़ार साल पहले की थेरियाँ हों, भक्तिकाल की ललदेद या तुलसी पत्नी रत्नावली, आधुनिक युग की अन्ना केरिनिना--अनामिका ने सबको अपनी कविताओं में पुनर्जीवित कर दिया है। यहाँ तक कि आज के समय में जीने वाली स्त्रियाँ भी भामती और राधा की बेटियाँ हैं जो स्त्री-जीवन के विडम्बनाओं भरे इतिहास को अलग-अलग कोणों से पलटकर, साझी पीड़ा के दर्द भरे लोक गीत सस्वर गा रही हैं। इस यात्रा से गुज़रते मन की दुछत्ती पर बहुत कुछ जमा हो गया है। अनामिका के इस काव्यानुभव पर प्रियदर्शन ने लिखा—"कहने की ज़रूरत नहीं कि स्त्रीत्व सहज ढंग से इस परम्परा की पुनर्व्याख्या और पुनर्रचना भी करता रहता है....उनके जो बिम्ब कविता में हमें बहुत अछूते और नये लगते हैं, जीवन की एक धड़कती हुई विरासत का हिस्सा हैं, उसी में रचे-बसे, उसी से निकले हैं और अनामिका को एक विलक्षण कवयित्री में बदलते हैं।"

परिवार और इतिहास की लम्बी उड़ान के बीच समाज के वंचित तबकों की स्त्रियाँ और बच्चियाँ भी हैं जिनके शोषण के और भी की रूप हैं। 'चौदह बरस की कुछ सेक्स-वर्कर्स' कविता में छोटी बच्ची के मासूम वाक्य, हृदय में करूण चीत्कार बनकर गूँजते हैं—

अंकल तुम भारी बहुत हो!
अच्छा, एक चाकलेट खिला दो!
अंकल तुम्हारी भी बेटी हैं?
अच्छा, बोलो, उसक क्या नाम?
वह भी मेरे-जैसी मज़ेदार है क्या—बोलो तो!

ये सेक्स वर्कर्स, यौन दासियाँ चेहरे पर हँसी का घूँघट ओढ़े, अपनी देह से बाज़ार और मीडिया के आभासी पर्दे पर पुरुष को लुभाती हुई भी अपने मन से विदेह हैं। अपने मन को अपनी देह से अलग कर लेने का गुण ही स्त्रियों को जीवित रखता है, क्योंकि देह सभी आघातों की लीला-स्थली है लेकिन मन उससे मुक्त नयी दिशाओं का संधान करने में लगा है।

अपने शोषण की महीन पहचान होते हुए अनामिका की कविताओं की स्त्री गहरे अन्तर्द्वन्द्व में फँसी है। शेक्सपीयर की पंक्ति 'टू बी और नॉट टू बी' की तर्ज़ पर कवयित्री स्त्री-मन के स्थाई अन्तर्द्वन्द्व को लक्षित करती है—खाऊँ-न-खाऊँ, जाऊँ -न-जाऊँ, करूँ-न-करूँ, कहूँ-न-कहूँ की लम्बी शृंखला है जो हर दम उसके मन को घेरे रहती है। जीवन की इस

विडम्बना को जीना, शेक्सपीयर के ही महान पात्रों की तरह ट्रेजिक है जो जीवन के इस ऊहा-पोह की नियति में कैद होकर रह जाते हैं। अनामिका द्वारा प्रस्तुत स्त्री-मन और स्त्री-जीवन के छोटे-बड़े आख्यान भारतीय स्त्री की कभी न ख़त्म होने वाली महाकाव्यात्मक त्रासदी की रचना करते हैं। गैर-समानता के इन मुखर बिम्बों में कवयित्री अपना मौन विरोध दर्ज करती है। उनके अनुसार 'चुप्पी का अपना ही सौन्दर्यशास्त्र / नीतिशास्त्र हुआ करता है.....'। यह चुप्पी, यह चीख अनामिका ने अपनी कविताओं की आन्तरिक बुनावट में सहेज रखी है इसीलिए उनका स्वर टकराहट और संघर्ष का न होकर उलाहने का है।

पीड़ा और मुक्ति का गहरा अन्तर्सबन्ध है, अनामिका इस सम्बन्ध को पहचानती हैं, तभी कहती हैं–

मैं एक दरवाज़ा थी
मुझे जितना पीटा गया
मैं उतना खुलती गयी।

इसी आशय का स्पष्टीकरण कवयित्री ने अनुष्टुप काव्य-संकलन के अपने आरम्भिक वक्तव्य में भी दिया है–"वैयक्तिक, सामाजिक, भौतिक, आधिभौतिक जीवन की कोई भी तकलीफ, जीवन की विडम्बनाओं की एक महीन-सी समझ मनुष्य में अनजाने विकसित कर देती है। पीड़ा इसी अर्थ में प्रक्षालक है–मुक्ति के द्वार खोलने वाली।" यह सचेतना ही सजगता का प्रमाण है।

'टोकरी में दिगंतः थेरीगाथा 2014' तक आते-आते पीड़ा का स्वर करुणा में बदलने लगता है। करुणा अपने प्रति भी और दूसरों के प्रति भी, जिससे भेद करने वाली दूरियाँ मिटने लगती हैं और एक रोशनी फूटती है जिसके आलोक में भविष्य के तरल-स्निग्ध होने की कामना जगती है। स्त्री-चेतना को लेकर अनामिका की इस पोज़िशन पर कवि अशोक गुप्ता लिखते हैं–"वे जुझारू नारीवादी नहीं हैं, लेकिन भारतीय नारी के दुखों, यातनाओं और संघर्ष को सही परिप्रेक्ष्य में समझने- समझाने वाली स्त्री विमर्शकार अवश्य हैं। वे अपने समाज और संस्कृति की आलोचनात्मक ढंग से जाँच-पड़ताल कर उसके सकारात्मक पक्षों और स्त्री भूमिका की पहचान के लिए 'स्पेस' बनाने के लिए संघर्षशील हैं।"

अनामिका की कविता का एक पक्ष यदि स्त्री-पीड़ा की साझेदारी से जुड़ा हुआ है तो दूसरा पक्ष उसमें अन्तर्निहित मुक्ति की संकल्पना के अन्वेषण में सन्नद्ध है। वस्तुतः अनामिका जिस 'स्त्रीत्व के मानचित्र' की परिकल्पना करती हैं उसमें मुक्ति अपने बाहर नहीं खोजी जाती, न ही वह बाहरी तत्त्वों पर आश्रित है। लगातार प्रताड़ित होती स्त्री के भीतर एक कोना हमेशा ऐसा रहता है, जो हार नहीं मानता। उसकी ऊर्जा, शोषण के दबावों के समानान्तर विकसित होती है।

रेखा सेठी : जन्म : नवम्बर, 1966। 'स्त्री-कविता पक्ष और परिप्रेक्ष्य', 'स्त्री-कविता पहचान और द्वंद्व', 'विज्ञापन : भाषा और संरचना', 'विज्ञापन डॉट कॉम', निबन्धों की दुनिया : प्रेमचंद' (सं), 'निबन्धों की दुनिया : बालमुकुन्द गुप्त' (सं), 'हवा की मोहताज क्यों रहूं' (इंदू जैन की कविताएं-सं) आदि, 'समय की कसक' (सुकृता पॉल कुमार की अंग्रेजी कविताओं का हिंदी अनुवाद) पत्र-पत्रिकाओं में शोध-आलेख, लेख व समीक्षाएँ प्रकाशित तथा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भागीदारी। सम्प्रतिः दिल्ली विश्वविद्यालय के इन्द्रप्रस्थ कॉलेज में प्रोफेसर। सम्पर्क : 9810985759